अनुक्रमांक

गान

1. "ख्याल शैली का उद्‌भव" — डॉ. आनन्द कृष्ण ज्योतिषी — 15
2. ग्वालियर की समृद्ध संगीत परम्परा — श्री प्रमोद कुमार तिवारी — 17
3. हवेली संगीत : एक ध्रुपद परम्परा — डॉ. स्मिता पाण्डेय — 21
4. रागांग पद्धति : एक दृष्टि — सुश्री रूचि मिश्रा — 23

आतोद्य

5. ''शहनाई''—एक विशुद्ध भारतीय सुषिर वाद्य — प्रो. राधेश्याम जायसवाल — 29
6. रस-भावाभिव्यक्ति में स्वर वाद्यों का प्रभाव — प्रो. रश्मि दीक्षित — 34
7. पं. सामता प्रसाद जी का 'वज्रादपि कठोर कुसुमादपि कोमल' तबला वादन —डॉ. रेनू जौहरी — 37
8. स्वर वाद्य- सारंगी — डॉ. प्रीती सिंह — 39
9. ताल के दस प्राण-संगीत में इसका अध्ययन एवं महत्व — सुश्री सीमा चौधरी — 41
10. भारतीय संगीत में लय एव ताल का अनुषासन एवं महत्व — सुश्री कविता मिश्रा — 44
11. Notation Systems of Sitar Music in Mid 19th and 20th Century — Shri Siddharth S. Shukla — 50

थाती

12. जाति जुलाहा मति का धीर — प्रो. सदानन्द शाही — 61
13. सबदन मारि जगाये रे फकीरवा — प्रो. सदानन्द शाही — 67
14. रातीजगा गीतों का कथ्य एवं भाव सौन्दर्य — डॉ. देवदत्त शर्मा — 73
15. लोक साहित्य मानव का आदिम राग है — श्री रवि नन्दन सिंह — 76
16. भोजपुरी लोक नाट्यों में प्रयुक्त गेय विधाएँ — डॉ. सुरेन्द्र कुमार — 80
17. मध्य प्रदेश के अंचलों का भारतीय संगीत जगत में योगदान — सुश्री नेहा त्रिपाठी — 82

संवाद

18. राग की तरह विस्तृत हुआ मेरा परिवार — मल्लिकार्जुन मंसूर से डॉ. गौतम चटर्जी 87
19. मृणालिनी साराभाई :-घुंघरु के साथ बंधी जिन्दगी — पंडित विजयशंकर मिश्र 92
20. I will create a better singer than Ajoy Chakraborty – Pt Ajoy Chakraborty — Pt. Vijay Shankar mishra 95

व्यक्तित्व

21. महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी की धार्मिक अवधारणा — सुश्री सुगन्धा वर्मा 103
22. धर्म और संगीत में महामना की उत्प्रेरणा — श्री मनु प्रकाश मौर्य 106

प्रकीर्णक

23. राग एक विवेचन — डॉ. रेखा रानी 113
24. संगीत की मनोवैज्ञानिकता — सुश्री गीता गुप्ता 118
25. 'संगीत की उत्पत्ति : एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन' — श्री नागेन्द्र मिश्र 121
26. पाश्चात्य सौन्दर्य दर्शन एवं विद्वानों के मत पर एक दृष्टि — डॉ. रूचि मिश्रा 124
27. संगीत में शब्द का स्थान — श्री नंदकिशोर झा 130

सौन्दर्य

28. इतिहास लेखन की भारतीय संस्कृति और संस्कृत वाङ्मय — डॉ. संजू मिश्रा 135

संस्कृति

29. दीपोत्सव : उत्पत्ति और विकास — डॉ. क्षेत्रपाल गंगवार 141
30. पृथ्वी-सूक्त में राष्ट्र भावना — डॉ. सारिका मिश्रा 144
31. सभ्यता, संस्कृति एवं सगीत — सुश्री पल्लवी मिश्रा 147
32. ग़ज़ल की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियाँ — सुश्री स्मृति शुक्ला 149
33. An Aspect of Ancestor Worship in Hinduism — Tomoka Mushiga 151

समायिकी

34. संगीत शिक्षा में शोध की गुणवत्ता : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ — डॉ. विनीता श्रीवास्तव 159
35. The influence of Music in Advertisement — Dr. Arati Mishra 166
36. आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता — श्री नंदकिशोर झा 169
37. शिक्षण संस्थाओं में संगीत प्रदर्शन कला के पाठ्यक्रम में परिवर्तन की आवश्यकता — सुश्री सुप्रिया सिंह 172

शास्त्र

38. सलिल क्रीड़ाएँ तथा सद्यस्नाता नायिका — डॉ. क्षेत्रपाल गंगवार 177
39. उर्दू साहित्य में ग़ज़ल एवं संगीत — श्री अंकित मिश्रा 182
40. शास्त्रीय संगीत शिक्षण पद्धति में शास्त्र पक्ष की भूमिका — सुश्री एकता मेहता 185

अंकन

41. लोक चित्रकला कला परम्परा व संस्कृति का संवाहकः आदिवासी समाज — सुश्री किरन मिश्रा 191

नर्तन

42. Chari' in Natyashastra and Contemporary Kathak — Vidushi Shambhauvi Shukla Mishra 199

राधा-कृष्ण

43. संगीत में राधा कृष्ण — डॉ. ममता त्रिवेदी 205
44. भारतीय साहित्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम — सुश्री प्रियंका ठाकुर 209
45. Radha-Krishna and the Vaishnava Exuberance in Rabindranath Tagore's Literary World — Dr. Sujit Kumar Ghosh 218
46. पं. जयदेव कृत गीतगोविन्द में वर्णित कृष्ण-राधा प्रसंग में सांगीतिक तत्त्व — निधि श्रीवास्तव 221

पं. जयदेव कृत गीतगोविन्द में वर्णित कृष्ण-राधा प्रसंग में सांगीतिक तत्व

निधि श्रीवास्तव

शोधछात्रा, (एस.आर.एफ.)
संगीतशास्त्र विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भक्त कवियों में शिरोमणि रसिकराज श्री जयदेव अपनी अमरकृति 'गीतगोविन्द' के कारण विख्यात हैं, किन्तु उनका प्रामाणिक जीवन वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है। जयदेव के सम्बन्ध में अब तक के अनुसंधान से ज्ञात होता है कि उनका जन्म बंगाल राज्यान्तर्गत 'वीरभूमि' नामक स्थान के निकटवर्ती किंदुविल्ब ग्राम में सं. 1165 के लगभग हुआ था।[1] जयदेव के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब वे छोटे थे, तभी उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। इसके उपरान्त वे जगन्नाथपुरी चले गये थे। उनका आरम्भिक जीवन भगवान जगन्नाथजी के भक्तिपूर्ण गीतों का गायन करते हुए बीता था। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (सं. 1176-1235) की सभा में विद्यमान थे। लक्ष्मणसेन संस्कृत काव्य के प्रेमी और सुकवियों के आश्रयदाता थे। उनके राजदरबार में गोवर्धनाचार्य, उमापतिधर, शरण और महाकवि धोयी जैसे कविपुंगव विद्यमान थे। जयदेव जन्मजात 'कवि और गायक' थे। अपने सरस गेय काव्य के कारण वे राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि हो गये थे। उनकी (कविता-माधुरी) से प्रभावित होकर ही राजा लक्ष्मण सेन ने उन्हें दरबार में प्रतिष्ठित पद प्रदान किया था।

जयदेव गृहस्थ थे। उन्होंने विवाह किया, उनकी पहली पत्नी का नाम रोहिणी था जिससे उनको कृष्णदेव नाम का पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ।[2] उनकी दूसरी पत्नी का नाम पद्मावती था। इन्हीं पद्मावती के समय में आदरणीय कवितारत्न का विभूषण 'गीत-गोविन्द' काव्य जयदेव ने रचाा।[3] पद्मावती से परिचय के पश्चात् जयदेव अपने स्थापित इष्टदेव की सेवा, विवाहार्थ द्रव्य एकत्र करने की इच्छा, तीर्थाटन एवं धर्मोपदेश की रुचि से निज देश को छोड़कर बाहर निकले।

श्री बल्लभ सम्प्रदाय में 'गीतगोविन्द' का विशेष महत्व है। बल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी श्री विलनाथ जी की 'गीतगोविन्द' की प्रथम अष्टपदी पर एक रसमय टीका भी रोचक है, जिसमें दशावतार-वर्णन, श्रृंगारपरक लगाया गया है। वैष्णवों में प्रणाली है कि अयोग्य स्थल में 'गीतगोविन्द' को नहीं गाना चाहिए, क्योंकि उनका विश्वास है कि जहां भी 'गीतगोविन्द' गाया जाता है, वहां भगवान का अवश्य ही प्रादुर्भाव होता है, इस पर वैष्णवों में एक आख्यायिका प्रसिद्ध है एक वृद्धा को 'गीतगोविन्द' की (धीरे समीर यमुना तीरे) यह अष्टपदी याद थी। वह गोवर्धन के नीचे किसी ग्राम में रहती थी। एक दिन वह बैंगन के खेत में पेड़ों को सींचने के साथ ही यही अष्टपदी भी गाती जाती थी, इससे कृष्ण भी उसके पीछे-पीछे फिरे। श्रीनाथजी के मंदिर में जब तीसरे पहर उत्थान हुआ तो गोस्वामी जी ने देखा कि श्रीनाथजी का बागा फटा है तथा बैंगन के कांटे तथा मिट्टी लगी हुई

है। इस पर भगवान से जब पूछा गया तो पता चला कि अमुक वृद्धा ने 'गीतगोविन्द' गाकर मुझे बुलाया, इससे कांटे तथा मिट्टी लग गयी, क्योंकि वह गाती थी और जहां-जहां जाती थी मैं उसके पीछे-पीछे फिरता था। तभी से गोस्वामी जी ने यह आज्ञा वैष्णवों में प्रचारित की कि कु-स्थल पर कोई गीतगोविन्द न गावे।

ऐसा कहा जाता है कि 'प्रिये चारशीले' इस अष्टपदी में 'स्मर गरल खण्डनम् मम् शिरसि मण्डन' इस पद के आगे जयदेव कवि की इच्छा हुई कि 'देहि पद-पपल्लवभुदारञ्च' ऐसा पद रखें, परन्तु ईश्वर के लिए ऐसा पद रखने का उनका साहस न हुआ, इससे पुस्तक छोड़कर ये स्नान करने चले गये। भक्त-वत्सल, भक्त-मनोरथपूरक भगवान् इसी समय स्नान से फिरते हुए जयदेव कवि के घर आये, प्रथमतः पद्मावती ने जो रसोई तैयार की उसे ग्रहण किए, तत्पश्चात् पुस्तक खोलकर देहि पदपल्लवमुदारं लिखकर शयन करने लगे। इतने में जयदेव कवि आए तो देखे कि पतिव्रता पद्मावती जी बिना जयदेव कवि के भोजन किये जल तक भी नहीं पीती थी, वह भोजन कर रही है। जयदेव कवि ने कारण पूछा, पद्मावती ने आश्चर्य से सब वृत्तान्त कहा। इस पर जयदेव कवि ने जाकर पुस्तक देखी तो 'देहि पदपल्लवमुदारं' यह पद लिखा है। वह जान गए कि यह सब चरित उसी रसकेन्द्र शिरोमणि भक्त-वत्सल भगवान का है। पुनः गद्गद् होकर पद्मावती की थाली का प्रसाद लेकर ही उन्होंने अपने को कृतकृत्य माना।

जयदेव कवि वैष्णव-सम्प्रदाय में एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि सम्प्रदाय की मध्यावस्था में इनका नाम मुख्य रूप से लिया गया है। यथा-

''विष्णुस्वामी समारम्भां जयदेवादि मध्यगा।
श्रीमद्वल्लभपर्य्यतं स्तुमों गुरुपरम्पराम् ।।''[14]

शताब्दियां बीत गई, जयदेव कवि इस भूमण्डल को छोड़कर परमधाम चले गए, किन्तु अपनी कवित्व-शक्ति से आज भी हमारे समाज में वे सादर स्थित हैं। जयदेव कवि का पवित्र शरीर केन्दुली ग्राम में समाधिस्थ है। यह समाधि-स्थल मनोहर लताओं से वेष्ठित होकर अपनी सुन्दरता से आज भी जयदेव कवि के सुन्दर चरित्र तथा चित्त का परिचायक है। इनके स्मरणार्थ केन्दुली ग्राम में आज भी मकरसंक्रान्ति के दिन बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें 70-80 हजार वैष्णव एकत्रित होते हैं तथा इनकी समाधि के चारों ओर गाते-बजाते संकीर्तन करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपूर्व बुद्धि के साथ ही साथ वाणी (सरस्वती) की कृपा उन पर खूब थी, तभी तो लक्ष्मण सेन, जैसे राजा के दरबार में अनेक कवि-पुंगवों के बावजूद जयदेव विशिष्ट प्रभा के समान प्रभाविष्ट थे। महाकवि जयदेव अत्यनत उदार एवं दयालुचित्त थे। डाकुओं के द्वारा हाथ-पांव काट लिये जाने पर अनुकूल अवसर पाकर, उनके मन में जो आक्रोश की भावना अपनी चाहिए उसका आना तो दूर, छायाचित्र भी इस उदारात्मा के अन्दर प्रविष्ट न कर सका। महाकवि जयदेव जहां भी रहे, उनके व्यक्तित्व ने उनकी विशष्टता की मरुभूमि खुद ही तैयार की।

'गीतगोविन्द' जयदेव की एकमात्र उपलब्ध कृति है। जयदेव ने अपने काव्य में भगवान श्रीकृष्ण तथा रासेश्वरी श्रीराधाजी की ललाम-लीलाओं का चित्रण करके, एक निर्दोष और अत्यधिक अभिनव कलाकृति का सृजन किया है। इनकी प्रसिद्धि तो इस बात से प्रमाणित होती है कि शताब्दियों तक उनके सम्मान के लिए प्रतिवर्ष उनके जन्मस्थान में एक उत्सव मनाया जाता है, जिसमें रात्रि में उनके काव्य के गीत गाये जाते हैं और लोग उनकी समाधि पर माल्यार्पण करते और नाचते-गाते हैं। सन् 1499ई. में बंगाल के शासक ने यह राजाज्ञा प्रस्तुत कर दी कि कोई भी नर्तक या वैष्णव सिर्फ जयदेव के ही गीतों को सीखे, साथ ही मन के सौन्दर्य को बिगाड़ देने वाले सर विलियम जोन्स के अनुवाद के माध्यम से भी जयदेव के प्रशस्त गुणों को गैटे (जर्मन कवि) ने उसी प्रकार प्रशंसा की, जैसा कालिदास के 'मेघदूत' तथा 'शकुन्तला' नाटक की थी।

जयदेव की कविता का स्वरूप बहुत ही मौलिक है। इससे यह धारणा फैल गयी कि यह कविता एक

छोटा-सा गोप-नाट्य (लेरिक ड्रामा) है, जैसा कि लासेन का कहना है कि यह एक परिष्कृत यात्रा है, बॉन श्रोडर भी यही नामकरण पसन्द करते हैं। दूसरी तरफ पिशेल तथा लेवी इसको गीत तथा नाट्य की मध्य कोटि के अन्य बातों के अतिरिक्त इस आधार पर रखते हैं कि यह यात्रा कोटि के नाट्य प्रयोगों से बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि इसमें वृत्त-परिवर्तन के पद्य एक निश्चित रूप में रखे गये हैं, उनको तुरन्त रचकर बोलने के लिए नहीं छोड़ दिया गया है, परन्तु पिशेल भी उसको भावुकतामय श्रृंगारिक नाट्य कहते हैं। डॉ. कीथ का कहना है कि प्रेम-काव्य के रूप में गीतगोविन्द भारतीय साहित्य में अप्रतिम है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि 'गीतगोविन्द' वह कृत है, जो युग-युगान्तर तक भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य को उलझन में डाले हुए थी तथा विभिन्न विद्वानों ने इसकी समान रूप से प्रशंसा भी की।

जयदेव ने 'गीतगोविन्द' काव्य को विभिन्न सर्गों में विभाजित किया है, जो इस बात का संकेत है कि उन्होंने इसे सामान्य काव्य की कोटि का माना है। अंकों और विष्कम्भकादि में विभक्त करके इसे नाटकीय रूप देने का उनका विचार नहीं था। दूसरी ओर इसे लिखते समय उनके ध्यान में बंगाल की वे यात्राएँ थीं, जिनमें एक आदियुगीन ढंग के नाट्य में कृष्ण के सम्मानार्थ संगीत व गानों के साथ नृत्य किया जाता था। अपनी कविता में अत्यधिक प्राणप्रद-तत्त्व के रूप में ऐसे गीत को रखते समय जयदेव ने निःसन्देह भविष्य में मन्दिरों तथा उत्सवों में होने वाले उन गीतों के उपयोग का पूर्व साक्षात्कार कर लिया था। हस्तलिखित पोथियों में गीतों को संगीत के राग और ताल और उसके साथ होने वाले नृत्य के पारिभाषिक शब्दों द्वारा ठीक-ठीक संकेत के साथ दिया गया है। कवि का अभिप्राय निश्चित रूप से यही है कि वह गीतों को अपने मानस-चक्षुओं के सम्मुख इस प्रकार गाया जाता हुआ देखें। इस प्रकार जयदेव के इस कविता-माधुरी का सृजन निश्चित रूप से मौलिक था, क्योंकि यात्राओं के लोकप्रिय गीतों द्वारा इतनी सुन्दर तथा परिष्कृत कृति का निर्माण एक बहुत बड़ा कदम है।

जयदेव विरचित 'गीतगोविन्द' विशुद्ध प्रतीकात्मक गीतिकाव्य है। गीतिकाव्य की पूर्ण प्रतिष्ठा के निमित्त कमनीय साधनों का अस्तित्व आलोचक-वर्ग मानता है, वे समय अपने परिपूर्ण वैभव के साथ गीतगोविन्द में वर्तमान है। जयदेव ने संस्कृत के पुराणपंथी छन्दों की अवहेलना न करते हुए भी कविता को एक नया परिधान दिया और ध्रुवक देकर पद लिखने की परम्परा को बल दिया। वैसे गीतगोविन्द की पदावलियो में संस्कृत साहित्य की परम्पराएं, श्रृंगार-वर्णन की रूढ़ियां, अलंकृत वर्णन-शैली, अनुप्रास और यमक का आधिक्य अपने मौलिक रूप में सन्निहित है तथा यह भी सत्य है कि संस्कृत में पद लिखने की प्रथा छिट-पुट रूप में उनसे पहले भी रही है, किन्तु 'गीतगोविन्द' में उसका इतना प्रांजल और प्रौढ़ स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है कि आगे के कवियों के लिए यही प्रेरणा का स्रोत बन गया, जिसका अनुकरण कर दर्जनों काव्य रचे गये।

'गीतगोविन्द' वस्तुतः गीतिकाव्य (लिरिक पोइट्र) है, क्योंकि जयदेव ने स्वयं ही कहा कि इसके आस्वाद के लिए पाठक के मन में 'संगीत, विष्णु-भक्ति, तथा श्रृंगार-रस आदि के तत्त्व निरूपण की जिज्ञासा हो। इस प्रकार स्वयं जयदेव ने अपने 'गीतगोविन्द' काव्य में संगीत, भक्ति तथा श्रृंगार का सुन्दर पुट देकर संस्कृत काव्य-परम्परा में एक नूतन अभिव्यक्ति को प्रतिपादित किया और भारतीय तथा पाश्चात्य संस्कृत-प्रेमियों को उलझन में डाल दिया।

डॉ. 'डे' का कथन है कि 'पदावली जो गीतगोविन्द के कलेवर के अधिकांश में व्याप्त है, वास्तव में जन-भाषा में प्रचलित अभिव्यक्ति-पद्धति का प्रतिरूप है, संगीतमय छन्द तथा अन्त्यतुक और ध्रुवक प्राचीन संस्कृत-साहित्य में कठिनता से ही कहीं प्रयुक्त हुए होंगे। स्वयं 'पदावली' शब्द का प्रयोग भी जो बाद के बंगाली गीतों में इतना प्रचलित हुआ, संस्कृत में इस अर्थ में कहीं नहीं हुआ, अपितु जन-साहित्य (लोक-साहित्य) से ही ग्रहण किया गया है।

जयदेव ने अपने काव्य में लीलागान परम्परा का भी निर्वाह किया है। लीलागान की परम्परा अतिप्राचीन है, यह परम्परा दशवीं, ग्यारहवीं शती में बौद्ध-सिद्धों के गान, चण्डीदास के पद तथा विद्यापति की पदावलियों में उड़ीसा और बंगाल में खूब प्रचलित थी। ऐसी लीलागान की परम्परा लोकभाषा में बहुत दिनो से प्रचलित थी और जयदेव भी इससे प्रभावित हुए। लीलागान की यह परम्परा पूर्वी भारत में ही नहीं, अपितु दीर्घकालीन से समूचे उत्तरी भारत में पूर्व से पश्चिम तक जनता में प्रचलित थी।

इस प्रकार जयदेव की वाणी का परिधान गांवों के गीतों में शताब्दियों से चली आती हुई सूत्र से निर्मित हुई, फिर भी वह ग्राम्य नहीं है क्योंकि इसका परिमार्जन एक मजे हुए कलाकार के हाथों हुआ है, जो भक्ति और श्रृंगार के आरण से इन्द्रधनुषी रंग की तरह आभा प्रकट करता है। डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा ने ठीक ही कहा है 'पक्के राग के विशेषज्ञ प्रचलित भाषा में स्वतंत्र ही रचना चाहते हैं, उनकी प्रवृत्ति तो यही होती है कि वे एक-दो शब्दों को लेकर उन्हीं को भिन्न-भिन्न रूप से तोड़-मरोड़ कर गाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि 'गीतगोविन्द' संक्षिप्त शास्त्रीय-संगीत से स्वतंत्र होता हुआ एक सर्वसाधारण ग्राह्य स्वरूप रखता है, जिसका आधार लोकगीत समझना चाहिए। कीथ के अनुसार, ''गीतगोविन्द जैसे काव्य की रचना उल्लेखनीय मौलिक कृत है, क्योंकि यह यात्राओं के लोक-गीतों के अत्यन्त सुन्दर कलात्मक काव्य के प्रणयन की दिशा में एक महान प्रयत्न है।

गेयपद शैली की दृष्टि से गीतगोविन्द काफी हद तक लोक-साहित्य से प्रभावित है, जयदेव से पूर्व संस्कृत कवि अपनी रचना पर अपना उल्लेख नहें करते थे, लेकिन जयदेव ने अपने काव्य के प्रत्येक अष्टपदी के अन्त में अपने नाम का उल्लेख किया है। उन्होंने प्रायः सर्वत्र 'जयदेवभणितम्' का प्रयोग किया। नामोल्लेख की यह प्रथा निश्चित रूप से लोक-साहित्य की प्रवृत्ति थी, उदाहरणार्थ पांचवें अध्याय में उद्धृत सिद्ध कवि सरहपा के गीतों की यह अंतिम पंक्ति उल्लेखनीय है-

''जामें काम कि कामें काम, सरह भणइ, अचिन्त सोधाम।''[15]

'सरह भणइ और जयेदव भणितम्' का साम्य विशेष रूप से लक्षितव्य है। इसी प्रकार 'चौपाई' और 'दोहा' अपभ्रंश के अपने छन्द है। संस्कृत काव्यों में चौपाई-छन्द का प्रयोग नहीं मिलता है, जयदेव ने कई प्रबन्धों की रचना छन्द में की है। इसी प्रकार अपभ्रंश का दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रचलित छन्द दोहा है, यह मात्रिक छन्द है, जिसके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में चौबीस मात्राएं होती हैं तथा ग्यारह और तेरह पर यति होता है,गीतगोविन्द के एक प्रबन्ध में यह छन्द भी प्रयुक्त हुआ है। मात्राएं दोनों पंक्तियों में दोहा के ही समान हैं केवल यति का पालन नहीं किया गया है।

''मामियं चलिता विलोक्य वृत वधुनिचयेन।
सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन।
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव ध्रुव पद।।''[16]

इस प्रकार 'गीतगोविन्द' अपने युग की एक चमत्कारिक एवम् अलौकिक रचना है, जयदेव ने लोकशैली की विधाओं का अध्ययन कर, शास्त्रीय-पद्धतियों को आधार मानकर, कुशल जौहरी के समान शब्दों के नगों को एक-एक करके यथास्थान जड़ दिया है। समूची रचना में ऐसे शब्द खोज निकालना कठिन है, जो भावनाओं के अनुरूप कोमल न हो। शब्दों के अन्तः संगीत का जैसा माधुर्य इस रचना में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

संगीतरत्नाकर के अनुसार गीत गोविन्द में रागों के नामो का वर्णन मिलता है–

गीतगोविन्द के प्रथम सर्ग के द्वितीय प्रारंभ से ही रागों के विषय में वर्णन मिलता है। उल्लेखित है की मालव-राग रुपकताले अष्टपदी पद सनखय 1 से 11 तक प्रथम प्रबंध) (द्वितीय प्रबंध)।

गुर्जरागे प्रतिमंठ ताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 9 बसंत-रागे (तृतीय प्रबंध) 1 से 8 रामकरी रागे अष्टपदी 1 से 8 (चतुर्थ प्रबंध)

द्वितीय सर्ग के अंतर्गतः। गुर्जर-रागे रूपक-ताले अष्टपदी 1 से 8 (पंचम प्रबंध)

मालव-रागे एक-ताली अष्टपदी 1 से 8 तक (अष्टपदी प्रबंध)

तृतीय सर्ग। गुर्जर रागे प्रतिमंठ ताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 8 (सप्तम प्रबंध)

चतुर्थ सर्ग। कर्नाटक-रागे एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 8

देशाख्य एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 8 (नवम प्रबंध)

पंचम सर्ग। देशव रागेण रूपक ताल अष्टपदी पद संख्या 1 से 8

सथ सर्ग– गुण-करी रागेण अष्टपदी पद संख्या 1 से 8 सप्तम सर्गण् मालव रागेण एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 8 बसंत-रागे एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 8 गुर्जर रागे एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 8 देशव रागे रूपक ताले अष्टपदी-अष्टम सर्ग- भैरवी रागे एक ताली ताले अष्टपदी

नवम सर्ग–गुर्जर रागे रूपक ताले अष्टपदी

दशम सर्ग–देशव रागे रूपक ताले अष्टपदी

एकादश सर्ग–बसंत रागे रूपक ताले अष्टपदी

वरातिरागे अडव ताले अष्टपदी

द्वादश सर्ग–विभास रागे एक ताली ताले अष्टपदी रामकरी रागे रूपक ताले अष्टपदी। इस प्रकार रागों एवं तालों का वर्णन मिलता है।

सन्दर्भ-

1. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, द्वादश सर्ग, श्लोक संख्या 5।
2. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्या 4।
3. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, तृतीय सर्ग, श्लोक संख्या 5।
4. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्या 2।
5. दासगुप्ता, लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रंथ परम्परा, लेख डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी, पृ.सं. 251।
6. वहीं।
7. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, श्री मोरेश्वर राय देशमुख, सम्पादन-पं. पुनीत मिश्र।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, श्री मोरेश्वर राय देशमुख, सम्पादन-पं. पुनीत मिश्र, श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार, वाराणसी।
2. दासगुप्ता, लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रंथ परम्परा, लेख डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
3. श्रीवास्तव, आरती, ब्रज रास में संगीत, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. सिंह, वंदना, ब्रज की संगीत परम्परा, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली।